International Journal of Education and Science Research
Review
E-ISSN 2348-6457
Volume-3 Issue-6 December- 2016 P-ISSN 2348-1817
www.ijesrr.org Email- editor@ijesrr.org

वर्तमान में विदुर नीति की प्रासंगिकता

राज बहादुर यादव
शोधार्थी
मोनार्ड विश्वविद्यालय
हापुड़

डॉ0 ऋतु भारद्वाज
शोध निर्देशिका
मोनार्ड विश्वविद्यालय
हापुड़

प्रासंगिकता – परिचय

किसी भी शोध प्रबन्ध की सारगर्भिता उसके द्वारा विश्लेषित निष्कर्षों पर निर्भर करती है एवं उसकी वस्तुनिष्ठता का प्रतीक उन निष्कर्षों के नग्न रूप में प्रस्तुतीकरण पर निर्भर करता है क्योंकि सत्य का स्वरूप जो निष्कर्षों के आधार पर उभरकर सामने आया है सदैव शोधार्थी की मानसिकता और मान्यताओं के अनुरूप हो यह आवश्यक नहीं है।

जहॉ तक वर्तमान प्रासंगिकता का सन्दर्भ है यह उसके मूल्यांकन हेतु शोधार्थी को एक निश्चित प्रक्रिया का पालन करना होता है जिसमें सर्वप्रथम उद्देश्य केन्द्रित तथ्यों का प्रस्तुतीकरण तत्पश्चात् वर्तमान में निहित उन्हीं तथ्यों के स्वरूप का निरूपण, तत्पश्चात् दोनों का तुलनात्मक अध्ययन और फिर प्रयोजनवादी दृष्टिकोण से उसकी उपादेयता का स्तर निर्धारित करना होता है क्योंकि प्रासंगिकता को प्रभावित करने वाले कारकों में कालक्रम, सांस्कृतिक परिवेश एवं पूर्व एवं वर्तमान कालीन परिस्थितियॉ निर्णायक दायित्व निर्वहन करती हैं।

उपरोक्त प्रक्रिया के आधार पर सर्वप्रथम विदुर–नीति के शिक्षा दर्शन में निहित शिक्षा के विभिन्न पक्षों पर विश्लेषित निष्कर्षों का संक्षिप्त प्रस्तुतीकरण समाचीन होगा।

लक्ष्य एवं उद्देश्य

मानव जीवन के प्रत्येक पक्ष तथा दैनिक जीवन की प्रत्येक क्रिया को सफल बनाने के लिए उद्देश्यों का विशिष्ट महत्व होता है। उद्देश्य के ज्ञान के बिना शिक्षक उस नाविक के समान होता है जिसे अपने लक्ष्य का ज्ञान नहीं तथा छात्र उस पतवार विहीन नौका के समान है जो समुद्र की लहरों के थपेड़े खाती हुयी तट की ओर बढ़ती जा रही है।

शिक्षा के लक्ष्य एवं उद्देश्यों की वर्तमान में प्रासंगिकता का मूल्यांकन करें तो विदुर–नीति में शिक्षा के उद्देश्यों को दो दृष्टिकोणों से विभाजित किया है, आध्यात्मिक एवं लौकिक। आध्यात्मिक उद्देश्यों में परम उद्देश्य दुःखों से मुक्ति है **(आध्यात्मिक दुःख, अधिभौमिक दुःख और अधिदैविक दुःख)** जिनके लिए मुख्य साधन ज्ञानार्जन एवं विवके है एवं लौकिक सन्दर्भों में तुष्टियों **(प्रवृत्ति तुष्टि, उपादान तुष्टि एवं भाग्य तुष्टि)** की प्राप्ति हेतु प्रमुख लक्ष्य आत्म–साक्षात्कार माना है । इसके साथ ही साथ शिक्षा का अन्य प्रमुख उद्देश्य **सत्यं, शिवं एवं सुन्दरं** के शाश्वत मूल्यों का सम्यक अववोध भी है। उपरोक्त के अतिरिक्त बालक के शरीर की कर्मेन्द्रियों एवं ज्ञानेन्द्रियों के शारीरिक विकास को भी विदुर ने शिक्षा का एक प्रमुख लक्ष्य माना है। एक अन्य महत्वपूर्ण उद्देश्य बौद्धिक विकास भी है जिसके परिणामस्वरूप मानव इन्द्रियों, मन या अहंकार से प्रभावित नहीं होता वरन् इच्छाशक्ति के विकास के परिणामस्वरूप निर्णय लेने की क्षमता का अधिकारी हो जाता है जिससे व्यक्तित्व के बर्हिमुखी विकास हेतु सर्वांगीण विकास सम्भव हो सकता है। विदुर–नीति में शिक्षा के वैयक्तिक एवं सामाजिक उद्देश्यों का सुन्दर समन्वय दृष्टिगत होता है जिससे मानव व्यवहार सम्यक् रूप ले सकता ळें

छात्र संकल्पना

किसी भी संस्कृति में, किसी भी काल में शिक्षा का केन्द्र बिन्दु छात्र ही माना जाता रहा है उक्त सन्दर्भ में दो विचारधाराओं ने सदैव शिक्षा को प्रभावित किया–

प्रथम के अनुसार सभी छात्रों को समान माना गया और

द्वितीय के अनुसार कोई भी दो छात्र समान नहीं हैं।

प्रथम दृष्टिकोण दर्शन से प्रभावित है और द्वितीय दृष्टिकोण मनोविज्ञान से। विदुर–नीति में स्पष्ट रूप से प्रथम दृष्टिकोण का प्रभाव परिलक्षित होता है। शिक्षा की पद्धति, अनुशासन की अवधारणा एवं शिक्षक का छात्र के प्रति व्यवहार का निर्धारण सभी छात्र के आत्मिक स्वरूप पर आधारित से प्रतीत होते है।

विदुर–नीति द्वारा प्रतिपादित छात्र प्रवृत्ति की यह अवधारणा, शिक्षक के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। यह ज्ञान प्राप्ति हेतु शरीर व आत्मा के सापेक्षिक महत्व को प्रदर्शित करती है। यह मध्यममार्गी अवधारणा है जिसमें न तो शरीर की उपेक्षा है और न आत्मा की ही। यह भौतिकवाद और आध्यात्मवाद के मध्य सेतु रूप है जिसके अनुसार मात्र आत्मा, शरीर के बिना स्वयं को अभिव्यक्त करने में असमर्थ है तो दूसरी ओर आत्मा के बिना शरीर प्रकाश रहित है। छात्र के सर्वतोन्मुखी विकास हेतु इनका सहयोग एक आवश्यकता है। अतः छात्र का आत्मिक स्वरूप उसके शारीरिक स्वरूप पर निर्भर है। छात्र का सर्वतोन्मुखी विकास तभी सम्भव है जब इन दोनों को समान रूपेण महत्वशाली माना जाये।

अनुशासन

अनुशासन की अवधारणा की पृष्ठभूमि पर अवधान केन्द्रत करने से ज्ञात होता है कि किसी काल की राजनैतिक, धार्मिक तथा दार्शनिक विचारधारा के साथ–साथ अनुशासन का दृष्टिकोण भी परिवर्तित होता रहा है– स्वभावतः ही अनुशासन की समस्या पूर्णरूपेण जीवन दर्शन पर आधारित होती है। एक काल या स्थिति में किसी समान का जैसा जीवन दर्शन होता है वैसा ही अनुशासन का सिद्धान्त उस समाज में अपनाया जाता है। अनुशासन किसी भी देश या समाज के जीवन की सबसे अमूल्य निधि है। जिस प्रकार अनुशासन का मूल्य राष्ट्र के जीवन में बहुत अधिक है, उसी प्रकार व्यक्ति के जीवन के लिए भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है क्योंकि मानव समाज के लिए बालक नागरिक रूप में विद्यालय में तैयार किये जाते हैं। अतएव विद्यालयों में भी अनुशासन महत्वपूर्ण है। प्रत्येक समाज में रहने वाले नागरिक को कुछ अधिकार प्राप्त हैं, परन्तु उन्हें जो कर्तव्य समाज के प्रति निभाने पड़ते हैं, वे भी उतने ही आवश्यक हैं । बिना कर्तव्यों के अधिकारों का कोई मूल्य नहीं है। इसी प्रकार एक विद्यालय में छात्रों को शिक्षा दी जाती है, उनका जीवन सुदृढ़ और सुन्दर बनाया जाता है परन्तु यह भी उनसे आशा की जाती है कि वे विद्यालयों के नियम का पालन करें और विद्यालय में उचित व्यवहार को अपनायें। इस प्रकार अधिकार और उत्तरदायित्व या कर्तव्य आपस में सह–सम्बन्धी हैं।

शिक्षक–शिक्षार्थीसम्बन्धों का जो स्वरूप विदुर–नीति प्रस्तुत करती है वह किसी भी समाज व किसी भी युग के लिए आदर्श सम्बन्धों की परिकल्पना है। आज के युग में छात्रानुशासन विभीषिका को कम करने का एक मात्र उपाय शिक्षक–छात्र सम्बन्ध इसका एक आदर्श उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। स्वतन्त्रता शब्द आज का सबसे दुरूपयोग शब्द है। स्वतन्त्रता के नामा पर उच्छृंयलता व अनुशासनहीनता ने शिक्षक जगत को ग्रसित किया हुआ है। आज पूर्णतः व्यक्तिगत सन्दर्भ में परिभाषित की जाती है। परिणामस्वरूप एक की स्वतन्त्रता दूसरे की स्वतन्त्रता के लिए अभिशाप स्वरूप हो जाती है। विदुर–नीति में क्योंकि स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए सर्वप्रथम आवश्यकता आत्म–संयम को माना गया है। इस कारण यहाँ स्वतन्त्रता व अनुशासन एक दूसरे के पूरक हो जाते हैं। विदुर–नीति के अनुसार स्वतन्त्रता एक उच्च कोटि का लक्ष्य है जिसका रूप मुक्ति है जिसकी ओर मानव निरन्तर अग्रसर हो रहा है। आज के शिक्षा जगत में यह समन्वयकारी दृष्टिकोण पर्याप्त उपयोगी हो सकता है, क्योंकि विदुर–नीति अनुशासन में नहीं वरन् मर्यादा में रहने का आग्रह करती है। यह आधुनिक लोकतन्त्र में व्यक्ति स्वतन्त्रता के सिद्धान्त को सही आधार प्रदान कर सकता है।

पाठ्यक्रम

मानव के विचारों, सत्यों, मूल्यों तथा आदर्शों के आधार पर पाठ्यक्रम का निर्माण होना चाहिए। वे इस सम्बन्ध में बालक, उसकी वर्तमान तथा भावी क्रियाओं एवं संसार की अन्य वस्तुओं को कोई महत्व नहीं देते। वे बालक के वर्तमान अनुभवों की अपेक्षा समस्त मानव जाति के अनुभवों को अधिक महत्व देते हैं। शिक्षा का दार्शनिक आधार इस बात पर बल देता है कि दर्शन साध्य है तथा शिक्षा साधन। दूसरे शब्दों में दर्शन जीवन के लक्ष्य को निर्धारित करता है तथा शिक्षा उन लक्ष्यों को अपने उद्देश्यों द्वारा पाठ्यक्रम के माध्यम से प्राप्त करती है। चूँकि जीवन के लक्ष्यों तथा शिक्षा के उद्देश्यों में देश, काल तथा दार्शनिक विचारधाराओं के अनुसार परिवर्तन होता रहता है, इसलिए शिक्षा का पाठ्यक्रम भी इस परिवर्तन की लपेट से बच नहीं सकता अर्थात पाठ्यक्रम भी सदैव समय काल तथा विचारधारा के अनुसार बदलता रहता है। दूसरे शब्दों में दर्शन का पाठ्यक्रम से गहरा सम्बन्ध होता है। अतः जिस देश में जैसी विचारधारा प्रचलित होती है। वहॉ की शिक्षा का पाठ्यक्रम भी उसी के अनुसार बन जाता है। इसके अर्न्तगत उन्हीं विषयों को स्थान दे दिया जाता है जिनके अध्ययन द्वारा उस देश अथवा समाज की तत्कालीन समस्यायें, आवश्यकतायें तथा आकांक्षायें पूरी हो जाये।

विदुर–नीति में पाठ्यक्रम का निरूपण अप्रत्यक्ष रूप से किया गया है जिसका आधार उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि है। विदुर–नीति पर क्योंकि सांख्य, वेदान्त का प्रत्यक्ष प्रभाव परिलक्षित होता है इस कारण पाठ्यक्रम परिकल्पना भी उसी के अनुरूप है।

विदुर–नीति में पाठ्यक्रम क्योंकि बाल्यावस्था, शैशवावस्था और किशोरावस्था में बालविकास पर आधारित है। इस कारण पाठ्यक्रम के सन्दर्भ में विषयों का चयन इसी क्रम में किया जा सकता है यथा शैशवावस्था में आरम्भ में पाठ्य–सामग्री प्रकाश, वायु, जल, मिट्टी से सम्बन्धित होनी चाहिए एवं जहॉ तक सम्भव हो सके छात्रों को इनके प्रत्यक्ष सम्पक्र से अवसर मिलने चाहिए। दूसरे स्तर पर शब्द, रूप, रस, गन्ध एवं स्पर्श तन्मात्राओं के प्रशिक्षण का प्रावधान किया गया है इसके अतिरिक्त इस स्तर पर पाठ्यक्रम में व्यक्तिगत स्वच्छता, शारीरिक स्वास्थ्य और व्यायाम आदि का भी प्रावधान किया गया है बाल्यावस्था में क्योंकि ज्ञानेन्द्रियों व कर्मेन्दियों का विकास होता है अतः इस स्तर पर कल्पना शक्ति का मुक्त विकास होने के कारण स्मरण शक्ति पर आधारित तथ्यों के संचयन सम्बन्धी विषयों का प्रावधान इस स्तर पर किया गया है। किशोरावस्था में स्व प्रत्यय का स्थायीकरण की प्रक्रिया आरम्भ हो जाती है और छात्रों में बुद्धि के विकास के फलस्वरूप स्वतन्त्र निर्णय तथा मौलिकता का आविर्भाव होने लगता है। अतः इस स्तर पर इस प्रकार के विषयों का प्रावधान किया गया है जिसमें मूर्त से अमूर्त के तथ्यों का संचयन हो जिससे कि अमूर्त तथ्यों का निर्माण हो सके।

शिक्षण पद्धति

शिक्षण एक त्रिध्रुवीय प्रक्रिया है, जिसका–
प्रथम उद्देश्य वस्तुगत निर्धारण है।
द्वितीय उद्देश्य अधिगम अनुभव एवं
तृतीय उद्देश्य मूल्यांकन है।

शिक्षक व छात्र प्रत्यक्ष रूप से द्वितीय पक्ष से सम्बन्धित होते हैं क्योंकि अधिगम अनुभव केवल पाठ्य–वस्तु व शिक्षण विधि के माध्यम से ही अर्जित किये जा सकते हैं।

छात्र किसी भी शिक्षण–विधि का केन्द्र बिन्दु होता है, इस कारण किसी भी विधि का चयन करते समय छात्र की वर्तमान शैक्षिक स्थिति का ध्यान रखना चाहिए। समस्त व्यक्तित्व के अतिरिक्त उसकी सम्प्रेषण क्षमता एवं उसके पास उपलब्ध समय किसी भी शिक्षण विधि के चयन को प्रभावित कर सकते हैं। पाठ्यवस्तु ही वह साधन है, जिसका सम्प्रेषण शिक्षण का आधार होता है। पाठ्यवस्तु की विशिष्ट प्रकृति शिक्षण विधि के चयन को प्रत्यक्षतः प्रभावित करती है। शिक्षण उद्देश्यों की उपयोगिता, सामयिकता, योग्यता, औचित्य एवं व्यावहारिकता विधि के चयन को प्रभावित करते हैं यह सत्य है कि सदैव केवल मात्र एक ही विधि द्वारा अध्यापन सम्भव नहीं है, फिर भी शिक्षक को शिक्षण की कुछ प्रमुख रूप से प्रचलित विधियों का सहारा लेना ही पड़ेगा।

विदुर–नीति में शिक्षण–प्रक्रिया

विदुर–नीति के अनुसार शिक्षण प्रक्रिया को विश्लेषित करने पर चार तत्व प्राप्त होते हैं–

(अ) प्रमाता– ज्ञान प्राप्त करने वाला अर्थात शिक्षार्थी।
(ब) प्रमेय – वह विषय जिसका शिक्षण करना है।
(स) प्रमाण – वह साधन जिससे ज्ञान प्राप्त किया जाता है।
(द) प्रमिति – वह यथार्थ ज्ञान जो निश्चित होता है।

विदुर–नीति के अनुसार मानव मस्तिष्क में जगत का ज्ञान जिस रूप से होता है वह काफी सीमा तक विश्वसनीय होता है। अतः सभी प्रकार का ज्ञान वास्तविकता को प्रदर्शित करता है। मानव अपने शरीर की विशिष्ट रचना के फलस्वरूप इन्द्रियों द्वारा पदार्थ का बोध करता है तत्पश्चात् उसकी समानता पर अवधान केन्द्रित करता है और अनुमान के आधार पर विशेष परिणाम पर पहुॅचाता है। इस कारण इस क्रिया के करने हेतु इन्द्रियों का स्वस्थ्य व संवेदनशील होना आवश्यक है। निष्कर्षों में अन्तर कार्य में सावधानी व यथार्थता का ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा होती है तो ताक्रिक

आलोचना को एक विषय प्राप्त होता है। यह प्रक्रिया प्रयोजनवाद के **श**समस्या पर चिन्तन**श** पद के समरूप है। वास्तविकता के अन्वेषण का कार्य तो मानव कार्यकलापों में पहले से विद्यमान रहता है। अतः तक्रशास्त्र वह वैज्ञानिक

विधि है जिसके माध्यम से यथार्थ का पता अधिक प्रभावोत्पादक विधि में लगाया जा सकता है। इस प्रकार विदुर–नीति शिक्षण विधि में न तो केवल यथार्थ ज्ञान के अर्जन पर बल देता है वरन् उसकी वैधता का मूल्यांकन भी करना चाहता है। इस नीति की रूचि औपचारिक तथा वास्तविक व संगति तथा सत्य दोनों में ही है।

उपरोक्त विधियों के अतिरिक्त विदुर–नीति में कुछ अन्य शिक्षण विधियों का भी सन्दर्भ मिलता है जिसमें सबसे प्रमुख विधि स्वयं अन्वेषण विधि है। विदुर–नीति की यह निश्चित धारणा है कि ज्ञान को आत्मसात करने हेतु यह आवश्यक है कि छात्र ज्ञान की स्वयं अनुभूति करें क्योंकि दूसरों द्वारा प्रदत्त ज्ञान शाब्दिक रूप में ग्रहण किया जा सकता है। शिक्षक छात्र का मार्गदर्शन तो कर सकता है किन्तु ज्ञान के आत्मीकरण हेतु छात्र को स्वयं ही प्रयत्नशील होना पड़ता है।

वास्तविक भारतीय शिक्षा को अपनी मुख्यतः आदर्शवादी आध्यात्मिक विचारधारा को सार्थक करने के लिए समष्टि को ध्यान में रखना होगा। बालक का सम्पूर्ण व्यक्तित्व, सम्पूर्ण जीवन काल सम्पूर्ण वातावरण, जीवन के तात्कालिक उद्देश्य से लेकर परम उद्देश्य तक, शिक्षा के साधन उद्देश्य के अनुरूप होने चाहिए तभी सफलता की आशा की जा सकती है।

प्राचीन भारतीय शिक्षा दर्शन व समकालीन भारतीय शिक्षा दर्शन दोनों में ही जीवन के प्रति दृष्टिकोण में विदुर की नीतियों का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता हैं। समकालीन शिक्षा दार्शनिकों के विचारों में प्राचीन विदुर शिक्षा दर्शन प्राचीन रूप में नहीं वरन् नवीन परिवेश में उपस्थित हुआ है। इस कारण इसको नव्य नीति भी कहा जा सकता है। इस नव्य नीति में कुछ सामान्य मान्यताएं और सामान्य प्रवृत्तियां दृष्टिगत होती हैं। यह प्राचीन वेदों व उपनिषदों के दार्शनिक विचारों को सत्य मानते हुए भी आधुनिक पाश्चात्य वैज्ञानिक खोजों और समकालीन विचारों की अवहेलना नहीं करता है। इन दार्शनिकों के विचारों में सर्वत्र समकालीन भारत की सामाजिक और राजनैतिक समस्याओं पर विचार किया गया है। इन समस्याओं को चुनौती मानते हुए ही इन्होंने अपना चिन्तन किया है। स्वाभाविक रूप से इस चिन्तन में उक्त समस्याओं के हल खोजने का प्रयत्न किया गया है। भारतीय दर्शन के विकास के इतिहास में समकालीन नव्य विदुर दर्शन आत्म चेतना की स्थिति दिखलाता है, जिसमें पाश्चात्य विचारों की टकराहट से विचारकों को अपने वास्तविक स्वरूप की जॉच करने को बाध्य होना पड़ा। उन्होंने आधुनिक विचारों के प्रकाश में अपनी पूँजी का फिर से मूल्यांकन किया और उसके महत्व को पहचाना।

भारतीय शिक्षा दर्शन न केवल भारतीय अर्न्तरात्मा का प्रतिनिधित्व करता है बल्कि मूल मानवीय मूल्यों के आधार पर शिक्षा व्यवस्था प्रस्तुत करके युग की चेतना का प्रतिनिधित्व करता है। ऐसी बहुमूल्य परम्परा और निर्देशन को प्राप्त करना किसी भी देश के लिए गौरव की बात है।

उपरोक्त सन्दर्भ में विदुर–नीति आज भी पूर्णतः प्रासंगिक है क्योंकि मानव का सत्य स्वरूप आत्मिक ही है और आत्मिक उत्थान के परिणामस्वरूप ही परोक्ष रूप में मानव के ज्ञानात्मक स्वरूप का उत्थान हो जाता है जिससे लौकिक और आध्यात्मिक दोनों दृष्टिकोण में समायोजन सरल हो जाता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

उमास्वामी	:	तत्वार्थाधिगमसूत्र, दी सेन्ट्रल पब्लिशिंग हाउस, आगरा।
उदयन	:	न्याय कुसुमांजलि, ओरियन्टल बुक सप्लाई एजेन्सी, पूना।
मिश्र उमेश	:	भारतीय दर्शन, उत्तर प्रदेश हिन्दी ग्रन्थमाला, लखनऊ।
कल्याण	:	योगांक व वेदान्तक, गीता प्रेस, गोरखपुर।
गीश कालीवर वेदान्तवा	:	पातंजलि सूत्र, भोजवृत्ति सहित ;कलकत्ताद्ध।
भट्ट कुमारिल	:	श्लोक वार्तिक।
मिश्र केशव	:	तर्क भाषा, ओरियन्टल बुक सप्लाई एजेन्सी, पूना।
शास्त्री कोपिलेश्वर	:	दी इन्टरोडक्शन टू अद्वैत फिलॉसफी, कलकत्ता।
झा, गंगानाथ	:	न्याय सूत्र, भाष्य और वार्तिक सहित इन्डियन थॉट, इलाहाबाद।
उपाध्याय, गंगा प्रसाद	:	अद्वैतवाद।
चतुर्वेदी, ज्वाला प्रसाद	:	विदुर नीति और जीवन परिचय, रणधीर प्रकाशन, हरिद्वार।